आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 1/अंक 2/दिसंबर 2021
Received:02\12\2021; Accepted:09\12\2021; Published:24\12\2021

साक्षात्कार

डॉ.शकुंतला.पाटील,सुधा अरोड़ा से डॉ.शकुंतला.पाटील की बातचीत , आखर हिंदी पत्रिका, खंड 1/अंक 2/दिसंबर 2021,(186-191)

सुधा अरोड़ा से डॉ.शकुंतला.पाटील की बातचीत

भाग-1

सुधा अरोड़ा से मिलने की बहुत इच्छा थी, किन्तु कुछ मेरी तथा कुछ सुधा जी की पारिवारिक कारणों से उनसे मिलना संभव नहीं हो पाया। उनके साहित्य को पढ़ते समय मेरे मन में कुछ प्रश्न, कुछ जिज्ञासाएँ निर्माण हो रही थी। उनका समाधान प्राप्त करना भी आवश्यक था, जिससे मेरे शोधकार्य को पूर्णता प्राप्त हो सके। फोन पर मैं ने उनसे बात की और कहा कि उनके साहित्य को लेकर मेरे कुछ प्रश्न है तो उन्होंने मुझसे कहाँ कि वे मेरे सवालों का उत्तर फोन पर देंगी और हमने लगातार दो-तीन दिन तक फोन पर बातें की। मेरे सवालों और उनके जवाबों का शब्दरूप निम्नलिखित हैं।

- **आपको साहित्य के प्रति लगाव कैसे हुआ?**

मेरा जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ जहाँ माँ के जमाने में सोलह सत्रह साल में लड़कियों की शादी कर दी जाती थी। अपने सभी भाई बहनों में से मेरी माँ (जिन्हें हम बीडी कहते थे) पढ़ाई में काफी ज़हीन थीं। लाहौर की वैदिक पुत्री पाठशाला से हिन्दी में प्रढ़कर (वही प्रभकर की डिग्री जिसे हिन्दी के अग्रज रचनाकार विष्णु प्रभाकर ने अपने नाम का हिस्सा बना लिया था) प्रथम श्रेणी में पास कर चुकी थीं और साहित्य रत्न (जो एम.ए की कक्षा के बराबर था) कर कहीं थीं। पढ़ाई के दौरान वे कविताएँ लिखा करती थीं और किताबों के बीच छिपाकर रखती थीं। उन दिनों कविता लेखन में साहित्य प्रेमी छात्राओं की रोल मॉडल महादेवी वर्मा थीं। माँ की कविताएँ भी महादेवी जी की छाप लिए थीं- कुछ रोमांटिक, कुछ विरह वेदना लिए। लेकिन महादेवी जी की छाप लिए हुए उस समय की जिन साहित्य प्रेमी छात्राओं ने जो कुछ भी लिखा, सब महादेवी जी की रचनाओं के सामने बिला गया।

माँ और पापा-दोनों ही साहित्य प्रेमी थे। पर जैसा कि मध्यवर्गीय परिवारों में आम है- माँ ने शादी के बाद अपना साहित्य प्रेम घर की चूल्हा चक्की में और बच्चे जनने में झोंक दिया (और अपनी सारी रचनात्मक आकांक्षाएं मुझ में पूरा करने के सपने देखने लगीं) हालांकी खाली समय में वे साहित्यिक किताबें पढ़ती रहती थीं। हमारे घर विशाल भारत, विप्लव, चाँद, हँस पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती थीं। कलकत्ता के आर्य विद्यालय में श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री पापा के हिन्दी शिक्षक थे और पापा उनके बेहद प्रिय और मेधावी छात्र थे। भोपाल के अग्निहोत्री जी से बहुत लंबे समय तक पापा का पारिवारिक संबंध रहा।

- **आप पर किन-किन साहित्यकारों का प्रभाव रहा है?**

भारतीय लेखकों में आशापूर्ण देवी, महाश्वेता देवी, बिमल मित्र (बांग्ला), फैज़ अहमद फैज़ की नज़्में, इस्मत चुगताई, मंटो के संस्मरण(उर्दू), कुंदनिका कापड़िया (गुजराती), महादेवी वर्मा का गद्य, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग की रचनाएं, श्रीलाल शुक्ल का राग दरबारी, धर्मवीर भारती का सूरज का सांतवां घोड़ा, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, भवानीप्रसाद मिश्र, दुष्यंत कुमार, कुंवरनारायण, धूमिल की कविताएं। शैलेन्द्र के गीत। पाश की कविताएं मुझे भीतर तक छू जाती हैं। वैसा सामाजिक सरोकार और प्रतिबद्धता बहुत कम कवियों में इस शिद्दत से उभरकर आई है। लम्बी सूची है।

विदेशी साहित्य में मेरी सबसे प्रिय लेखिका हैं- 'सिमोन द बोआ' जिनकी किताब 'सेकेंड सेक्स' से मुझे स्थितियों को पहचानने की एक दृष्टि मिली। इसके अलावा लातिन अमेरिका को लेखिका ईसाबेल एलेंदे का गद्य, विस्लावा शिम्बोर्स्का की कविताएं। ऑक्टेवियो पॉज़ और पाब्लों नेरूदा की कविताओं का अपने छात्र काल में मैंने अनुवाद भी किया जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की त्रैमासिक पत्रिका 'प्रक्रिया: 1966' में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा आयन रैंड के उपन्यास, समरसेट मॉम, चेखव, दोस्तोवस्की, काफ्का और कामू की कहानियां, स्टीफेन त्स्वाइक (पहले ज़्विग कहा जाता था) और इलिया कज़ां की आत्मकथा, कवाबाता की जापानी लघु कथाएं।

- **लिखते समय आपकी अभिव्यक्ति में समाज कहाँ तक शामिल रहता है? क्या आप मानती है कि साहित्य आज के दौर में परिवर्तनकारी भूमिका निभाने की स्थिति में है?**

लेखक अगर सामाजिक जिम्मेदारी महसूस नहीं करता तो उसे शब्दों से खिलवाड़ करने वाला कलाबाज या लफ्फाज़द कहना चाहिए। लेखक कहलाने का हकदार वह तभी होता है जब उसका लेखन समाज में कुछ सकारात्मक होता है, समाज को दिग्भ्रमित नहीं करता- जैसे 'हंस' पत्रिका के संपादक राजेंद्र यादव करते रहें। भारत के और पश्चिम के महान रचनाकारों के उदाहरण देकर यह बताना कि वे अगर परिवार के प्रति गैर जिम्मेदार रहे, जिन्होंने अपनी पत्नियों को छोड़ छोड़कर बाहर एकाधिक संबंध बनाए तो उन्हें रोल मॉडल की तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, निहायत गलत अवधारणा है। किसी भी बड़े कलाकार या रचनाकार या गायक ने अपनी बदचलनी को महामंडित नहीं किया या इसे प्रतिमान नहीं बनाया जो हमारे हिन्दी साहित्य के ये बुजुर्ग साहित्यकार कर रहे हैं। आज साहित्य में और लेखन में हम जिस अपसंस्कृति के दौर से गुजर रहे हैं, उसमें अधिकांस लेखक सिर्फ अपनी जोड़-तोड़, पुरस्कारों की सांठ-गांठ, समीक्षकों की चापलूसी और अन्ततः

अपने लिखे हुए को प्रोमोट करने में लगे हैं। इससे साहित्य में गिरावट ही आएगी और अन्ततः साहित्य अपनी गरिमा खो देगा।

- **वह कौनसी रचना है जिसने आपको लेखन की दुनिया में स्थापित किया?**

पहली रचना से ही! पचास साल पहले छपी थी सन्1965 में उसीसे एक तरह से नाम तो सबके जहन में दर्ज हो गया था। क्योंकि उस वक्त इतनी महिलाएं नहीं थी लेखन में। सन्1965 में इतनी महिलाएं नहीं थी जैसे आज दो सौ महिलाएं लिख रही है। उस वक्त तो ऊँगलियों पे गिनि जाने लायक थी। तीन-चार लेखिकाएं थी। मतलब हमारे पहले पीढ़ी की थी। लेकिन सही मायने में पूछे तो कहानीकार मैं रहीं ही हूँ, कहानीकार से ज्यादा मुझे जिस आलेख पर सबसे ज्यादा प्रतिक्रियाएँ मिली जिससे दूर-दूर तक महिलाओं के जीवन में भी काफी कुछ बदला और समझ भी। वो है ‘जिस हिंसा के निशान दिखायी नहीं देते’। उस आलेख को बहुत ज्यादा पढ़ा गया है। कहानी में ‘उधड़ा हुआ स्वेटर’। उधड़ा हुआ स्वेटर सन् 2014 में छपी थी। अभी तक उसको जो भी पढ़ता है। अभी तक उसकी प्रतिक्रियाएँ आती है।

- **समकालीन महिला लेखन में अगर आपसे आपकी भूमिका और प्रदेय को कोई जानना चाहे तो आप क्या कहेंगी?**

देखिए, भूमिका और प्रदेय लगभग एक ही बात है। समकालीन लेखन में तो लिखा तो बहुत कुछ जा रहा है। ऐसी बात नहीं है कि नहीं लिखा जा रहा है। मेरी जो भावभूमि है वो ग्राऊंड वर्क से उगती है। मतलब मैंने महिलाओं के साथ काम किया है बहुत साल। और उनकी तकलीफ को बहुत नजदीक से देखा है। इस वजह से मुझे ऐसा लगता है कि मैं जो लिखती हूँ वो बिलकुल देखा और भोगा हुआ लिखती हूँ। इसलिए वो ज्यादा महिलाओं तक पहुँचता है। वरना पढ़ने में रोचक लगे और कहानियाँ या कविताएँ जो भी आनंद दे मन को उस तरह का लेखन तो बहुत किया जाता है। लेकिन जो आपको लेखन थोड़ा सोचने पे मजबूर करें वो फर्क होता है उसमें। और इधर कविताएँ भी लिखी है कई। कविताओं की किताब भी है और अभी उसका दूसरा संस्करण भी आनेवाला है तो कविताओं ने भी बहुत गेहरे से लोगों को छुआ है।

- **नारी मुक्ति जैसे नारों को लेकर देश दुनिया में चले तरह-तरह के आंदोलनों के बीच अपने इस समाज में आप किस तरह की नारी की कल्पना करती है? क्या आपको वेगुण या योग्यताएँ जो आज की भारतीय नारी में जरूरी लगते है?**

देखिए, हम अपने समाज में एक मुक्त विचारवाली नारी की कल्पना करते हैं। जो अपने दिमाग से सोच सके और जिसको अपनी मानसिक आजादी मिलें और वह अपना निर्णय खुद ले सके। लेकिन हम देहमुक्ति की बात नहीं करते हैं। जिसको बहुत ज्यादा बढ़ावा दिया गया है और कई लेखिकाओं ने भी उपन्यासों में स तरह के प्रसंग लिखे हैं। वो बहुत सहज स्वीकृति नहीं है हमारी संस्कृति की पर लेखिकाएँ ऐसे दिखाती है जैसे वो सहज स्वीकृत है। हाँ कि इसको हमें समाज के संतुलन के लिहाज से देखना चाहिए और लिखना चाहिए।

सिर्फ बोल्डनेस का तमगा पाने के लिए देहमुक्ति की बात करना बहुत ही असामाजिक है। आप समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाना चाहते है तो आपको अपनी निगाह को सही तरीके से रखना होगा और एक

दृष्टि होनी चाहिए समझने की कि मुक्ति आपकी किसमें है। आज हमें ऐसी स्त्रीयों की जरूरत है, ऐसी माँओं की जरूरत है जो अपनी बेटियों तो खैर सभी माँएं सही शिक्षा देंगी ही लेकिन अपने बेटों को स्त्री का सम्मान करना सिखाएँ। ताकि उनको तो ये सम्मान नहीं मिला। क्योंकि उनके पति ने अपने माँ से नहीं सीखा कि घर में जो बाहर से आयी हुई औरत है उसका सम्मान करें। लेकिन आप अपने बेटे को ये शिक्षा दे कि उसकी जहाँ शादी होती है वो बाहर से आती है। बीस-पच्चीस साल की लड़की एक दिन में तो आपके घर के सारे तौर-तरीके नहीं अपना लेगी ना। वो एक जड़ से उखडकर आयी है दूसरी जगह उसको रोकना है तो उसको समय लगेगा। सभी बेटों को ये शिक्षा माँ से ही मिलेगी। बहन का, माँ का, बेटी का पत्नी का सम्मान करें। बड़ी-बड़ी बातें करते है। बहुत से हमारे प्रगतिशील लोग हैं, बहुत प्रोग्रेसीव लोग है। बहुत कमाल की चिंता करते है, बहुत बड़ी चिंता करते हैं, राष्ट्र की चिंता करतें है। लेकिन अपने घर की स्त्री को सम्मान नहीं देते। यहीं मैं चाहती हूँ कि बाहर आप देश बदलने की, विश्व बदलने की बात करने से पहले अपने घर में अपना सहयोग दे। जो घर को संभालती है स्त्री उसको सबसे पहले सम्मान दें।

- **आपने कहानी लेखन की शुरुवात कब से प्रारंभ की?**

बीमारी के दौरान सन् 1964 में एक भावुक-सी कहानी लिखी- 'एक सेंटीमेंटल डायरी की मौत।' कहानी लिख कर पिता जी को पढ़ने के लिए दी। माँ तो कहानी पढ़ कर रोने लगीं कि क्या हो गया है मुझे! इतना क्यूँ मौत से डर रही है, बीमारियाँ होती हैं, ठीक हो जाती हैं। लेकिन पिता ने बहुत प्रोत्साहन दिया और कहा कि, इस कहानी को किसी पत्रिका में छपने के लिए भेज दो। उनके कहने पर 'सारिका' में कहानी पोस्ट कर दी। उस वक्त 'सारिका' के संपादक चंद्रगुप्त विद्यालंकार थे। कहानी भेजने के एक महीने बाद मझे कहानी की स्वीकृति का पोस्टकार्ड आया, पर वह छपी मार्च 1966 में और तब तक मेरी तीन चार कहानियां ज्ञानोदय, धर्मयुग, रूपाम्बरा, लहर आदि पत्र-पत्रिकाओं में छप चुकी थी।

- **आपकी शुरुआती कहानियों में मृत्यु बोध केंद्र में है। इसका क्या कारण है?**

अजीब बात है कि 1965 के बाद भी मैंने कई कहानियां मौत पर लिखीं। अभी हाल ही में साहित्य अमृत के फरवरी अंक में छपी मेरी कहानी 'खिड़की' का विषय भी मौत ही है। मृत्यु एक ऐसी स्थिति है जो आपको अपने अंदर खंगालने के लिए विवश करती है, आपकी सोच को विस्तार देती है, आपको अच्छा इंसान बनाती है। प्रख्यात स्वीडिश निर्देशक इंगमार बर्गमैन की एक फिल्म थी 'द सेवेंथ सील'। मौत के इर्द-गिर्द घूमती और जिंदगी को कस कर थामे हुए। जब आप यह सोचते हैं कि मृत्यु ही एक चरम सत्य है और हमें आखिर सब कुछ छोड़ कर चले ही जाना है तो आप दार्शनिक होकर छोटे-छोटे राग द्वेष से उपर उठ जाते हैं। मौत दहशत नहीं देती, आपको अच्छा बनने की प्रेरणा देती है। मृत्यु का भय आपको आध्यात्मिक भी बनाता है। भौतिक सुख सुविधाओं से मन हट जाता है। मौत से हाथ मिला लेना आपको जिन्दगी जीने के गुर सिखा देता है।

- **'रहोगी तुम वहीं' कहानी लिखने के पीछे क्या आपके निजी कारण थे?**

हाँ, चौदह साल तक चुप रही तो वो ऐसे ही फूटा। 1980 में मैंने 'बोलो भ्रष्टाचार की जय' कहानी लिखी थी। उसके बाद कुछ पारिवारिक निजी समस्याओं में लेखन पर पूर्णविराम लग गया, लेकिन न लिख पाने की बेचैनी और हताशा तो मन में थी। 1993 में बारह साल की लम्बी चुप्पी के बाद 'रहोगी तुम वहीं' लिखी गई। चौदह साल की चुप्पी उसमें दिखाई देती है। वो कहानी पूरी विश्व में उसका ट्रांस्लेशन हुआ है और पाकिस्तानी चैनल ने उस पर एपिसोड़ का धारवाहिक बनाया हैं। क्योंकि समस्या तो पूरी युनीवर्सल है ना ये कोई मेरी निजी समस्या तो थी नहीं। सब जगह यहीं होता है।

- **'महानगर की मैथिली' को आपकी प्रतिनिधि कहानी माना जाता है, क्या कारण है?**

उसका एक सीधा सा कारण यह है कि वो बहुत से विस्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम में लगी हुई है। पाठ्यक्रम में होने की वजह से मुझे उस कहानी के नाम से ही पहचाना जाता है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मैं ने बाद में जो कहानियाँ लिखी वो भी उससे कमतर नहीं है। जैसे, 'बुत जब बोलते हैं'। 'उधड़ा हुआ स्वेटर' या मेरी जो छोटी-छोटी कहानियाँ है। जो दो-दो, तीन-तीन पन्ने की कहानियाँ है। जो पूरी 'एक औरत की नोटबुक' में ग्यारह कहानियाँ है। सबका अपना महत्व है। वो अलग बात है कि पाठ्यक्रम में होने की वजह से किसी एक कहानी के साथ आपका नाम जुड़ जाता है।

- **'सात सौ का कोट' कहानी मालिक और नौकर की संघर्ष गाथा है। क्या इसके पीछे किसी प्रकार की मार्क्सवादी दृष्टि भी रही है?.......औऱ वर्तमान में मार्क्सवादी विचार धारा प्रासंगिक हो सकती है?**

देखिए, मार्क्सवादी विचारधारा क्या है? मार्क्सवादी विचारधारा यानि जो दलित है, जो शोषित है, जो तबका दबाया गया है, जिसके पास आवाज़ नहीं है। उसको आवाज़ देना, उसको स्वर देना। ये तो लेखक का काम होता ही है ना। लेखक किसके पक्ष में खड़ा होगा? जिसको न्याय नहीं मिल रहा है। जिसके साथ अन्याय हो रहा है, अनाचार हो रहा है। उसी के पक्ष में तो खड़ा होगा ना। विचारधारा पर न भी जाय तो भी लेखक हमेशा शोषित की ही बात करता है। और समाज में जितनी विसंगतियाँ है उसको ही आगे सामने लाना चाहता है। और ठीक है मैं तो वैसे मार्क्सवादी विचारधारा की ही रही हूँ। और मुझे लगता है कि आपका लेखन का महत्व तभी है जब आप विसंगतियों से अवगत कराये समाज को, पाठकों को। मैं ने कई बार कहाँ है कि मैं मनोरंजन के लिए कहानियाँ नहीं लिखती। जो चीज मुझे डिस्टर्ब करती है, मैं चाहती हूँ कि वो और लोगों को भी डिस्टर्ब करें। लोग सोचे उसके बारे में, समाज की बेहतरी इसी में है कि आप हमेशा शोषित के पक्ष में खड़े हो।

मार्क्सवादी विचारधारा क्योंकि वह शोषित के पक्ष में खड़ी होती है। इसलिए वे हर समय में प्रासंगिक रहेगी। और ऐसा नहीं है कि दूसरी जो विचारधाराएँ है जो दूसरी पार्टीज़ है जो राजनीति में दूसरे लोग है वो लोग उसके पक्ष में नहीं खड़े होते ऐसी बात नहीं है। उनकी भी विचारधारा में थोड़ा मार्क्सवाद शामिल होता ही है।

- **आपकी चर्चित कहानी 'अन्नपूर्णा मंड़ल का आखिरी चिट्ठी' में आपने केंचुओं का प्रयोग किया है। वह किसका प्रतीक है?**

हमारे समाज में लड़कियों को ऐसे ही बिलकुल केंचुएँ कि तरह ट्रीट किया जाता है। जिसकी कोई रीढ़ की हड्डी नहीं है। इसलिए मार डालो, कुचल डालो। तो मुझे वो छोटी सी कहानी लिखनी थी। बहुत तकलीफ के साथ लिखी थी वो कहानी। मुझे केंचुओं का प्रतीक सामने आ गया तो लिख ली गई। देखिए, प्रतीक तो सिर्फ एक सूत्र होता है। मतलब एक किसी अपनी बात पहुँचाने का, क्योंकि आप सीधे-सीधे कैसे कहेंगे? उस तकलीफ को कैसे कहेंगे? अब उसमें कहानी की जब एक-एक लाईन पढ़ते है तो तकलीफ होती है ना तो उसी तकलीफ से गुजरकर कहानीकार भी लिखता है। अब केंचुएँ ही हो कि और कुछ दिमाग में आता तो शायद लिखा जाता। लेकिन केंचुएँ बारीश में बहुत ज्यादा बंबई शहर में पाये जाते हैं। और हम ऐसे घर में रहते थे, जहाँ केंचुएँ निकलते थे मुझे बहुत डर लगता था। वो जो दहशत होती है ना, उस दहशत की वजह से वो प्रतीक इसमें सटीक बैठ गया।

- **महानगरों के परिवेश की बात की जाय तो आपकी कहानियों ज्यादातर कलकत्ता और मुंबई के परिवेश के इर्द-गिर्द ही घूमती है इसका कारण क्या है? आप महाराष्ट्र में रहती है तो क्या आपकी कहानियों के पात्र मराठी परिवेश से भी प्रभावित है?**

मैं जो हूँ अपने माता-पिता के दिए संस्कारों की वजह से। हां, शहर का भी कुछ असर तो पड़ता ही है। दिल्ली में होती तो शायद कुछ और होती। कोलकाता की वजह से ही मेरे लेखन में सामाजिकता, सरोकार और प्रतिबद्धता आई। कोलकाता शहर हमेशा से मेरी दुखती रग रहा है। वो तो आना स्वाभाविक है। जैसे कोलकाता के परिवेश में दमनचक्र कहानी लिखी तो उसमें बंगाली परिवेश है। बांग्ला भाषा भी कई जगह आती है मेरी कहानियों में। परिवेश से फर्क पड़ता ही है। वैसे दिल्ली के भी परिवेश पर भी लिखी है कहानी 'सात सौ का कोट'। अब पिछले चालीस सालों से मुंबई में रहते-रहते इसकी आदत हो चली है। बहुत सी कहानियाँ है, जिसमें मराठी भाषा और बोली है। जैसे 'कांच के इधर उधर' में, 'तेरहवे माले से जिंदगी' में, 'महानगर की मैथिली' में भी मराठी पात्र आते हैं।

शेष बातचीत के अंश अगले अंक में......

****